आनंदराम ढेकियाल फूकन (1829-1859) असमिया जन-जीवन के उस संघर्षपूर्ण दौर में हुए, जब ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा असम पर अधिकार के एक दशक बाद उनकी मातृभाषा को सरकारी विद्यालयों और राज्य की अदालतों से किनारे कर उसका स्थान बाङ्ला को दे दिया गया था। स्थानीय भद्र समाज और जनता में से किसी ने भी इसके विरोध में आवाज़ नहीं उठायी। आनंदराम ने असमिया, बाङ्ला और अंग्रेज़ी के अपने अच्छे ज्ञान के कारण इसके भयावह और अपरिहार्य परिणामों को सबके सामने रखा। इनमें से कुछ अमरीकी बैप्टिस्टों ने, जो असम में धर्म प्रचार कर रहे थे, स्थिति की भयंकरता को महसूस किया। वे असमियों के लिए एक आंदोलन चलाने के लिए संगठित हुए लेकिन उनके लक्ष्य की पूर्ति 1873 में 29 वर्षीय फूकन की मृत्यु के चौदह वर्षों के बाद ही हो सकी। इतने विलम्ब से प्राप्त इस सफलता के पीछे भी आनंदराम ही थे जिन्होंने अपनी बहुश्रुत एवं प्रबुद्ध रचनाओं के माध्यम से असमिया भाषा की पुनःप्रतिष्ठा के लिए आवश्यक तर्क एवं तथ्य उपस्थापित किए और इस प्रकार एक स्थानीय भाषा में सुंदर आधुनिक साहित्य के विकास का मार्ग प्रशस्त किया।

इस लघु विनिबंध में **प्रो. महेश्वर नियोग** ने फूकन के संक्षिप्त किन्तु सार्थक जीवन और असमिया के लिए उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान उनके अपराजेय संघर्ष की कथा कही है।

आवरण आकल्पन : सत्यजीत राय
सन्निविष्ट चित्र : श्री चिन्मोहन सहनवीस के सौजन्य से।

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15-00

आनंदराम ढेकियाल फूकन

महेश्वर नियोग

भारतीय साहित्य के निर्माता

आनंदराम ढेकियाल फूकन

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य है, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं। उनके नीचे बैठा है मुंशी जो व्याख्या का दस्तावेज लिख रहा है। भारत में लेखन-कला का यह संभवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख है।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ई०
सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

आनंदराम ढेकियाल फूकन

लेखक
महेश्वर नियोग

अनुवादक
गंगाप्रसाद विमल

साहित्य अकादेमी

Anandaram Dhekiyal Phukan : Hindi translation by Ganga Prasad Vimal of Maheswar Neog's monograph in English. Sahitya Akademi, New Delhi (1991),

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15-00

© साहित्य अकादेमी

प्रथम संस्करण : 1991

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय

रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

विक्रय विभाग : 'स्वाति', मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय

जीवन तारा बिल्डिंग, चौथा तल, 23 ए/44 एक्स, डायमण्ड हार्बर रोड, कलकत्ता 700 053

29, एलडाम्स रोड, तेनामपेट, मद्रास 600 018

172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई 400 014

मूल्य

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15-00

मुद्रक

भारती प्रिण्टर्स

दिल्ली 110 032

एक

आधुनिक असमी भाषा के अग्रणी प्रणेता और पोषक आनंदराम ढेकियाल फूकन का जब 16 जून 1859 को देहान्त हुआ तब वे अपने जीवन की तीसी भी पार नहीं कर पाये थे। यदि बिलकुल सही हिसाब लगाया जाए तो उस समय उनकी अवस्था 29 वर्ष 6 महीने और 29 दिन की थी किन्तु उनके बारे में यह मानना पड़ेगा कि इस छोटी-सी अवधि में उन्होंने अपना जीवन-लक्ष्य प्राप्त कर लिया था। गौर वर्ण का यह युवक वास्तव में एक विशिष्ट व्यक्तित्व का स्वामी था। मुश्किल से साढ़े पाँच फुट क़द के थी ढेकियाल का प्रशस्त ललाट, बड़ी और दृप्त नासा और लाल-पुष्प के समान अरुण अधर थे। निचला होंठ ऊपरी होंठ से थोड़ा ही बड़ा था। उनका चेहरा लम्बोतरा था और गर्दन काफ़ी लम्बी। उनकी क़द-काठी सामान्य थी। उनकी सघन-केश-राशि उनके सारे सिर को ढकते हुए घुँघराले लच्छों में लहराती कन्धों तक आती थी। ऊपरी होंठ के ऊपर मूँछ की हल्की-सी रेखा थी जो ऊपर की ओर पूरी तरह कुंचित नहीं हो पाती थी। कलकत्ता के हिन्दू कॉलिज में छात्र के रूप में प्रवेश लेने के लिए जब वे पहली बार यात्रा कर रहे थे तब उनके बाल आस-पास से तो सँवारे हुए थे लेकिन सिर पर फिर भी छोटा-सा गोलाकार केशगुच्छ था।

वे अपनी वेशभूषा पर विशेष ध्यान देते थे। उन्होंने असमी ढंग से बँधी पगड़ी का रिवाज़ चलाया जिसका प्रचलन आधुनिकों में काफ़ी समय तक रहा। बाद में यह प्रवृत्ति सदा के लिए सहसा समाप्त हो गयी। वे न्यायालय में सिल्क की धोती (भाँगा पाट चूड़िया) कोट (आँगा चोला) छज्जेदार तिकोनिया पगड़ी आदि सभी कुछ वास्तविक असमी शैली में पहनकर जाते थे या फिर कलकत्ते जैसी जगहों में उन दिनों प्रचलित पाजामा, चपकन काबा या मिर्जई कोट और अमामा पगड़ी पहनकर। उनकी असमी शैली की पगड़ी का स्थान कभी-कभी टोपी ले लेती थी किन्तु उनका वेश चाहे जो हो उनके समग्र व्यक्तित्व से एक प्रकार की व्यवस्था, गरिमा और सुरुचिपूर्ण सम्पन्नता का भाव झलकता था।

'भव्य जीवन का एक सघन घण्टा' ऐसा था आनंदराम का जीवन 'एक सम्पूर्ण युग के योग्य किसी नाम के बिना'। असमी भाषा के अतिरिक्त अंग्रेज़ी और बाङ्ला दोनों भाषाओं में सुन्दर और समर्थ रूप से लिखने और इनसे प्रेम करने की अपनी क्षमता को उन्होंने पूर्ण अभिव्यक्ति दी।

यह सच है कि वे कोई महान् साहित्यिक विभूति नहीं थे बल्कि यों कहें कि थे ही नहीं। किन्तु वे मध्य उन्नीसवीं शताब्दी के असमी संसार के महान्तम नहीं तो महान पोषकों में से एक थे। वे ब्रिटिश असम के न्यायालयों और स्कूलों में असमी भाषा को उसका उचित स्थान दिलाने में सफल नहीं हो सके किन्तु वे ही थे जिन्होंने इस माँग के लिए सबसे समर्थ आवाज़ उठायी। उनके असामयिक निधन के उपरान्त प्रशान्त महासागर पार से आये और असम के शिवसागर और नवगाँव में बसे बैप्टिस्टों के एक समूह ने तथा असमी समाज की छिट-पुट किन्तु दृढ़ टुकड़ियों ने उनके सर्वदा अनुगुंजित रहनेवाले शब्दों का अनुकरण किया। उनके ये शब्द जीवन के इस रंगमंच से उठ जाने के चौदह वर्ष पश्चात् 1873 में अपनी सम्पूर्ति पा सके। यह अपने आप में कोई छोटी उपलब्धि नहीं थी। पहले, उन्होंने अंग्रेज़ी भाषा में असम और असमी भाषा का बड़ा तर्कसम्मत समर्थन किया जो 'आब्जर्वेशन्स ऑन् द एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ द प्रॉविन्स ऑफ आसाम—1853' तथा 'फ्यू रिमार्क्स ऑन् द असमीज़ लैंग्वेज एण्ड ऑन् वर्नाक्यूलर एजूकेशन इन आसाम—1853' नामक दो ग्रन्थों के रूप में प्रकाशित हुआ। यह कार्य उन्होंने अंग्रेज़ी में किया ताकि वह सत्ताधारियों तक पहुँच सके। इनका ऐतिहासिक मूल्य और महत्त्व अब तक बना हुआ है।

दूसरे, ढेकियाल ने बच्चों के लिए असमी भाषा की पहली प्राथमिक पुस्तकें (1849) उस समय लिखीं जब असमी भाषा अपने ही प्रान्त से दूर बहुत दूर, पूरी तरह से निर्वासित थी। सम्भवतः इस कार्य को उन्होंने एक चुनौती के रूप में किया ताकि असमी भाषा को आधुनिक शिक्षा के माध्यम के लिए असमर्थ न समझा जाने लगे। उन छोटी रचनाओं में भी उन्होंने असमी को बड़ी ही प्रांजल गद्य शैली में लिखा—सरल, घरेलू और प्रभावशाली। तीसरे, बाङ्ला भाषा को प्रान्तीय पाठशालाओं की प्राथमिक कक्षाओं से निकालने का प्रयास करते हुए, जहाँ पर कि वह अनधिकृत रूप से जमी हुई थी, उन्होंने बाङ्ला भाषा का गहन अध्ययन करके उस पर अधिकार प्राप्त किया। 'डिसीज़न्स ऑफ सदर दीवानी' और 'निज़ामत अदालत' के अपने बाङ्ला अनुवाद को जनवरी 1850 से आगे किश्तों में छपवाकर वे बाङ्ला भाषा के प्रथम असमिया लेखक बने। उनकी 'आइनाओ व्यवस्था संग्रह' व 'नोट्स ऑन् द लॉ ऑफ बंगाल—1855' बाङ्ला भाषा में अपने ढंग की प्रथम रचना है। बंगाल की जनता और समाचार पत्रों ने इनकी बड़ी प्रशंसा की। इस प्रकार श्री ढेकियाल ने समस्त उत्तर-पूर्व भारत की सेवा की। इनके प्रकाशन के लिए उन्होंने कलकत्ते में एक छापाख़ाना भी खरीदा। कलकत्ते की शिक्षा तथा संस्कृत तन्त्रों एवं फ़ारसी कविता के व्यापक अध्ययन से उनके विचार उदार हो गये थे और पाश्चात्य साहित्य और विज्ञान की अंग्रेज़ी शिक्षा को स्थानीय भाषाओं के माध्यम से पढ़ाने, पाठशालाओं

और विद्यालयों में संस्कृत सिखाने, स्त्री-शिक्षा, चिकित्सा की सामान्य शिक्षा, कृषि का यन्त्रीकरण, आधुनिक चिकित्सा द्वारा उपचार का विस्तार एवं जनता के लिए उन्होंने स्वस्थ न्यायिक और पुलिस प्रशासन का प्रबल समर्थन किया।

वे अपने समय से कुछ ज़्यादा ही आगे थे, और जितना जनता के लिए आकांक्षा करना और उपलब्ध करना संभव था उससे भी अधिक शीघ्र वे अपने देश की प्रगति चाहते थे। जैसाकि उनके जीवनीकार गुणाभिराम बरुआ ने कहा है कि उनके मन में अपने लोगों के प्रति कल्याण-भावना सदा इतनी प्रबल रही, मानो वे अपने दोनों हाथों से उन्हें सशरीर उठा लेंगे। आसाम के कमिश्नर और गवर्नर जनरल के एजेंट (1861-74), हेनरी हॉपकिन्स ने कहा है कि जो राजा राममोहन राय बंगाल के लिए थे आनन्दराम फूकन वही असम के लिए थे। और उस समय की इन दोनों प्रान्तों की तुलनात्मक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए वे राजा राममोहन राय से भी कहीं अधिक असाधारण थे।[1]

दो

आनंदराम ढेकियाल फूकन के पूर्वजों का विचित्र इतिहास 1780 के आसपास घटी एक ऐसी अजीब घटना से शुरू होता है जो असम में पागलपन के उस युग की विशेषता थी। उस समय एक अजीब क़िस्म का राजकुमार गौरीनाथ सिंह (1780-1795) असम के सिंहासन पर बैठा ही था। वह, जैसाकि सर एडवर्ड गेट ने लिखा है, अहोम वंशीय राजाओं में वह सर्वाधिक अयोग्य, रक्त-पिपासु, निन्दनीय और कायर था। कैप्टन वेल्श द्वारा उसे एक हीन, क्षीण, कार्य में अक्षम, सदैव नहाते रहने या प्रार्थना करनेवाले, और हरघड़ी अफ़ीम की पिनक में रहने वाले व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है। मोआमारिया जनों के प्रति घोर प्रतिशोध भावना से पूर्ण उसके व्यवहार की चर्चा हो चुकी है। अन्य शत्रुओं के प्रति भी उसका ऐसा ही व्यवहार बताया गया है। घोर बर्बरतापूर्ण व्यवहार के लिए उसे उकसाने को किसी घृणा या प्रतिशोध के उद्दीपन की आवश्यकता नहीं थी। वह क्रूरतापूर्ण कृत्य तो दूसरों को पीड़ा पहुँचाने के प्रति अपने निपट प्रेम के कारण

1. हेमचन्द्र बरुआ ने फूकन के जीवनी सम्बन्धी विवरणों को 'पथ भिलाला-1873' में उद्धृत किया है।

ही किया करता था। अपने खूनी आदेशों का पालन करनेवाले जल्लादों के समूह के बिना वह कभी घर से बाहर नहीं निकलता था। एक बार एक ज़रा-सी ग़लती के लिए इस सनकी राजा ने अपने युवा सचिव और पुराने मित्र की आँखें निकलवा दीं। बाद में विदेशी दरबार से एक पत्र आया जिसका अर्थ यही सचिव स्पष्ट कर सकता था। अन्धे कर दिये जाने के कारण दूसरा व्यक्ति जब उस सचिव की उँगली को उस पत्र के अक्षरों की आकृति पर फिरा रहा था तब उसे देखकर राजा का पाश्चात्ताप जागा और उसने बैजबरुओं (राजवैद्यों) को सचिव की दृष्टि लौटाने का आदेश दिया। इस प्रकार के तरंगी राजा के सामने सच बोलने के डर से राजवैद्यों ने कहा कि नयी आँखें लगाने के लिए विशेषज्ञ बाहर से बुलाने पड़ेंगे। राजा ने कृपापूर्वक इस प्रकार के विशेषज्ञ का पता लगाने के लिए एक खोजी दल को आदेश दिया।

यह दल खोज करता हुआ बंगाल में मुर्शीदाबाद तक पहुँचा जहाँ पर इस दल की भेंट लक्ष्मीनारायण नामक एक द्रविड देशवासी ब्राह्मण से हुई। अजीब बात थी कि इस ब्राह्मण ने अपने पैतृक घर का केवल इस बात पर परित्याग कर दिया था कि उसके तीन बड़े भाइयों ने उसकी नवविवाहिता पत्नी को हिस्से में उतने गहने नहीं दिये जितने कि उन्होंने अपनी-अपनी पत्नियों को दिये थे। कामाख्या प्रदेश के उन सिल्कधारियों से प्रभावित होकर तथा उनके आने के प्रयोजन को सुनकर किंचित् आश्चर्य और विनोद से वह ब्रह्मचारी यह कहते हुए चल पड़ा कि वह राजा को निश्चय ही प्रसन्न कर देगा। इसी बीच वह सचिव जिसे अन्धा कर दिया था, मर गया। मोआमारिया वैष्णवों के नये विद्रोह में अहोम वंशीय राजाओं की राजधानी लुट गयी और राजा गौरीनाथ सिंह भयभीत होकर गौहाटी भाग गया। यहीं कप्तान वेल्श के नेतृत्व में (1792) साठ-साठ अंग्रेज सिपाहियों की छः टुकड़ियों से उसे वांछित सहायता मिली और वह फिर से कूच करता हुआ अपनी राजधानी रंगपुर आ पहुँचा। लक्ष्मीनारायण राजा के सम्पर्क में आया। राजा और उसके मंत्रियों को उसने अपनी बात सुनायी और हादिरा-चौकी अथवा बंगघाट सीमा-चौकी पर सीमा शुल्क अधिकारी (दुवारिया बरुआ) के पद पर दस हजार रुपयों की कूच-बिहार की एकमुश्त नारायणी मुद्रा और सत्तर हज़ार रुपयों के सामान के वार्षिक वेतन पर नियुक्त हुआ। उसने छः निर्धन बालकों और एक अनाथ बालिका को गोद लेकर अपना एक विचित्र परिवार इकट्ठा किया। ब्राह्मणी की मृत्यु से पहले ही उसके सबसे बड़े दत्तक पुत्र परशुराम ने उत्तराधिकार में सीमा शुल्क अधिकारी का पद प्राप्त किया।

जब लक्ष्मीनारायण का देहान्त हुआ तब दत्तक पुत्रों में से एक, रणराम उसकी मृत्यु का समाचार विधवा पत्नी और परिवार के पास ले गया, जो अभी तक दक्षिण में निवास कर रहे थे। इधर सबसे बड़े दत्तक पुत्र परशुराम की देखरेख में

लक्ष्मीनारायण का गोद लिया असमी परिवार विशेषतः आयात के व्यापार तथा सरकारी सेवा में फल-फूल रहा था। आन्तरिक कलह के कारण अहोम का राजवंश द्रुत गति से पतन की ओर बढ़ रहा था। गौरीनाथ सिंह के उत्तराधिकारी कमलेश्वर (1795-1810) और चन्द्रकान्त (1810-1818) अत्यन्त दुर्बल शासक थे। राजनीतिक मंच पर प्रधानमंत्री पूर्णानन्द बुधगोरे का बोलबाला था। गौहाटी में वायसराय से झगड़कर बदनचन्द्र बरफूकन से लड़ता रहता था। बरफूकन ने अन्ततः ईर्ष्यावश बर्मी आक्रान्ताओं को बुलाकर अपनी मातृभूमि को लुटवा दिया।

परशुराम बरुआ अपनी मृत्युपर्यन्त सन् 1816 तक गौहाटी में हादिरा चौकी के अधीक्षक के रूप में काम करता रहा। उसके दो पुत्र थे। पहले पुत्र हलिराम का जन्म 1801 में हुआ था और दूसरे जज्ञराम (यज्ञराम) का जन्म 1805 में। अपने पिता की मृत्यु के उपरान्त अपने चाचा रणराम के अभिभावकत्व में चौदह वर्षीय हलिराम सीमाशुल्क अधिकारी बना। लेकिन मुश्किल से हलिराम सीमा शुल्क अधिकारी बना ही होगा कि बदनचन्द्र बरफूकन बर्मी सेना को आवा नगर से आहोम की राजधानी में ले आया, जो आजकल जोरहाट में है। चारों ओर एकदम से बड़ी भारी खलबली मच गयी। प्रधानमंत्री मर गया। कुछ लोगों के अनुसार वह अपने ही हाथों मारा गया था। बर्मियों ने चन्द्रकान्त को सिंहासन पर बिठाया और बदनचन्द्र ने अपने आपको 'मंत्री-फूकन' की पदवी से सुशोभित किया किन्तु शीघ्र ही वह एक हत्यारे का शिकार हो गया। पूर्णानन्द के पुत्र रुचिनाथ बुधनगोहेन ने चन्द्रकान्त को सिंहासन से हटा दिया और उसके स्थान पर एक दूसरे राजकुमार पुरन्दर को आसीन किया। बर्मियों ने 1810 में असम पर दूसरा आक्रमण किया और वे चन्द्रकान्त को नाममात्र के शासक के रूप में पुनर्स्थापित करने में सफल हुए। अस्तु, बाद में जब बर्मी सेनाओं को यह देखने के लिए भेजा गया कि उनके द्वारा सिंहासन पर स्थापित शासक सुरक्षित है कि नहीं तभी चन्द्रकान्त ने भ्रान्ति से उन्हें अपना शत्रु समझ लिया और उन पर धावा बोल दिया। घमासान युद्ध हुआ। असम वासियों की बुरी तरह से हार हुई। राजा ने भागकर गौहाटी में शरण ली। बर्मियों ने देश के पूर्वी भाग पर अधिकार कर लिया और जनता पर अपने सभी प्रकार के नृशंस अत्याचारों को क़ायम रखने के लिए अपने पिट्ठू योगेश्वर सिंह को गद्दी पर बिठा दिया। इस समस्त घटनाक्रम को 'मानर दिन' की संज्ञा दी गयी थी। जिसका नाम सुनते ही लोग आज एक शताब्दी बाद भी, काँप जाते हैं।

इस समय बर्मी लोगों की पश्चिमी भागों में भी बढ़ती लूटपाट देख हलिराम ने अपने लोगों के साथ गौहाटी छोड़ दी और वे हादिरा चौकी चले आये। राजा चन्द्रकान्त ने, जो बर्मी आक्रमणों के कारण पीछे हटते आ रहे थे, सन् 1822 में

महगढ़ में बर्मियों से आख़री मोर्चा लिया। इसमें राजा चन्द्रकान्त ने महान् व्यक्तिगत शौर्य का प्रदर्शन किया। कुछ समय तक उनकी सेनाओं ने शत्रु से जमकर लोहा लिया किन्तु अन्त में गोला-बारूद खत्म हो जाने के कारण अपने पन्द्रह हज़ार सैनिक गँवाकर पराजित हो गये। (गेट, पृष्ठ 230)। राजा चन्द्रकान्त की सेना में चैतन्यसिंह सूबेदार जैसे पराक्रमी पंजाबी योद्धा और अनेक गठे सुदृढ़ भारतीय सिपाही थे। इनमें से कुछ तो स्वयं हलिराम बरुआ के भर्ती किये सैनिक थे। जिसने स्वयं लड़ाई में बड़ी वीरता का प्रदर्शन किया। अन्त में, बचने की हड़बड़ी में नौका में रखी संगीन उनकी गर्दन में घुस गयी। संगीन को निकालकर घाव को पगड़ी से बाँधकर, स्त्रियों को पिछलीवाली नौका में बिठाकर तथा सम्बन्धियों सहित स्वयं नौका में बैठकर उन्होंने जोगी घोपा (गोपाल पाड़ा) में जाकर शरण ली। अपने बड़े कारोबारवाले गोपाल पाड़े में हलिराम थोड़े दिन टिके और फिर ब्रिटिश प्रदेशान्तर्गत रंगपुर ज़िले के सिलमारी नगर में जा पहुँचे। यहीं पर राजा चन्द्रकान्त सिंह, पुरन्दर सिंह और बुधनगोहेन अन्य साथियों के साथ शरणार्थियों के रूप में ठहरे थे। ये दोनों राजा अपनी स्थानीय सेना के साथ बर्मियों को अपनी भूमि से लड़कर निकालने के छिटपुट और असफल प्रयत्न करते रहते थे। हलिराम ने गंगास्नान के लिए तीर्थयात्रा की और इस पुण्य कार्य में मुर्शीदाबाद के प्रख्यात जगत सेठ ने उनकी सहायता की। अस्तु, इसी बीच बर्मियों ने, जो हमेशा अंग्रेज़ों से अपने को परेशान करनेवाले अहोम वंशीय इन दो भगोड़े राजाओं को लौटाने की माँग करते रहते थे, बंगाल की उत्तरी सीमा, चटगाँव और सिलहट पर अपने मनमाने आक्रमण से अंग्रेज़ों को नाराज़ कर दिया। इस पर रंगपुर के मजिस्ट्रेट तथा पूर्वी सीमान्त के गवर्नर जनरल के एजेंट डेविड स्कॉट ने बर्मियों के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही आरम्भ कर दी। अंग्रेज़ों और बर्मियों के विरुद्ध युद्ध में अंग्रेज़ों को अनेक जीतें हासिल हुईं। उन्होंने बर्मियों को असम की पुरानी राजधानी रंगपुर में सन् 1826 में बुरी तरह पराजित किया। 24 फरवरी 1826 की यन्दाबो की सन्धि के अनुसार अन्य बातों के साथ यह निर्णय लिया गया कि आवा का बर्मी राजा असम के मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा।

इस बीच हलिराम गोपाल पाड़ा आ ही पहुँचे थे। वे अब चन्दरिया रहते हुए अपना कारोबार सम्हालने लगे। उन्होंने वहाँ पर शरणार्थी रूप में आये आदत गिरि के कुश देव अधिकार स्वामी की सुपुत्री प्रसूति से विवाह किया। खेद की बात यह थी कि वे अपने विवाह में 'चौदोल' और बंगाल की गायिका वफावाली बाई के गाने के जश्न का खर्च नहीं उठा सकते थे। हलिराम और उनके भाई यज्ञराम स्कॉट के पूर्व परिचित थे, जो अब असम के प्रशासक के रूप में उनसे इस नये जीते हुए प्रान्त के विषय में अत्यन्त उपयोगी जानकारी प्राप्त करते थे।

स्कॉट के ही परामर्श से दोनों भाई गौहाटी लौट आये और उन्होंने भरलुमुख में अपना व्यापार जमाया। स्कॉट उत्तर असम के अपने दौरे पर हलिराम को अपने साथ ले गये, और नवगाँव तथा दाररंग ज़िलों की राजस्व-व्यवस्था के अतिरिक्त अन्य कई मामलों में उनकी सहायता एवं परामर्श स्वीकार किया। राजा चन्द्रकान्त ने, जब वे गौहाटी में थे, हलिराम और यज्ञराम को क्रमशः ढेकियाल और खारघरिया फूकन के पद पर नियुक्त किया था। स्कॉट ने उनको उसी पद पर माना। यज्ञराम उन कुछ व्यक्तियों में से थे जिन्होंने कलकत्ता में राजा राममोहन राय संस्थापित ब्रह्म समाज की प्रार्थना-सभाओं में भाग लिया था। वे अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त संस्कृत, बाङ्ला अंग्रेजी, फ़ारसी, अरबी, उर्दू और भोटिया आदि कई भाषाएँ जानते थे। ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने हिन्दी-असमी कोश की भी रचना की। (समाचार-दर्पण, कलकत्ता 19 मई 1932)

जब ऊपरी और निचले असम के 'सीनियर' और 'जूनियर डिवीज़न' बनाये गये तब हलिराम सीनियर डिवीज़न की कलक्टरी में शेरिश्तेदार के रूप में काम करते थे और कामरूप ज़िले की राजस्व-व्यवस्था के लिए एक सीमा तक उत्तर-दायी थे। वे पालकी में कार्यालय जाते थे। जिसके दोनों ओर बड़े छत्र लगे होते थे। वे कलकत्ते की लम्बी यात्राओं पर भी जाते थे और बंगालियों के लिए खास तौर पर लिखी अपनी संस्कृत की दो पुस्तकों के कारण उच्च वर्ग तक वे पहचाने जाते थे।

ये दोनों रचनाएँ थीं—संस्कृत में 'कामाख्या यात्रा' (1829) तथा बाङ्ला में 'असम बुरान्जी', 'आसाम का इतिहास'—1831। ये दोनों रचनाएँ 'समाचार चन्द्रिका' मुद्रणालय में छपी थी। वे यहाँ पर इतने लोकप्रिय हो गये थे कि कई बाङ्ला पत्र-पत्रिकाओं में उनके नाम पर श्लेषपूर्ण रचनाएँ प्रकाशित हुईं। 1832 में हलिराम को गौहाटी के सहायक मजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्त किया गया, किन्तु इसी वर्ष उनका देहान्त हो गया। वे संस्कृत तंत्र-शास्त्र और प्रदेश की लोक-गाथाओं के विद्वान थे। वे एक निष्ठावान तांत्रिक थे और दैनिक पूजा-अर्चना का उनका कार्यक्रम बहुत व्यस्ततापूर्ण हुआ करता था।

तीन

हलिराम ढेकियाल फूकन और उनकी पहली धर्मपत्नी प्रसूति से 7 आश्विन 1751 शाके अर्थात् सितम्बर 1829 को आनंदराम का जन्म हुआ। इसके तीन वर्ष बाद ही हलिराम की मृत्यु हो गयी। जब 1833 में पुरन्दर सिंह को शिवसागर और लक्ष्मीपुर जिलों का करदाता राजा बनाया गया तब उन्होंने परम्परागत ढंग से शासन करने का निश्चय किया और भूतपूर्व ढेकियाल के पुत्र होने के कारण वंशानुक्रम में आनंदराम को 'ढेकियाल' की पदवी प्रदान की।

पाँच वर्ष की उम्र में आनंदराम की औपचारिक पढ़ाई शुरू हुई। यज्ञराम खारघरिया फूकन के पुत्र दुर्गाराम, उमानन्द जशोधर अध्यापक तथा दूसरों ने उन्हें संस्कृत की शिक्षा दी। उनको पुरुषोत्तम के व्याकरण 'रत्नमाला व्याकरण' की कारिकाएँ तथा 'मुग्धबोध-व्याकरण' पढ़ाया गया। उन्हें थोड़ी-बहुत बाङ्ला भी सिखायी गयी पर उसमें वे विशेष प्रगति नहीं कर सके। 1835 में गौहाटी में पहला अंग्रेज़ी स्कूल स्थापित हुआ था, जिसके मि. सिंगर प्रधान अध्यापक थे। 1837 में आनंदराम ने इस स्कूल में प्रवेश लिया। 1838 में रणराम और यज्ञराम दोनों का निधन हो गया। परिवार में अब कोई अभिभावक शेष नहीं बचा। वैसे तो पहले ही यज्ञराम ने कमिश्नर कैप्टन जैनकिन् तथा डिप्टी कमिश्नर कैप्टन जेम्स मैथी, जोकि दोनों के व्यक्तिगत मित्र थे, को बच्चों का भार सौंप दिया था। इन दोनों अंग्रेज़ महानुभावों की वहाँ की जनता, विशेषकर विद्यार्थियों पर विशेष कृपा थी। और श्री मैथी वास्तव में आनन्दराम के लिए जीवन भर रक्षक-देवदूत बने रहे। आनंदराम ने इन दोनों सज्जनों से घनिष्ट सम्पर्क बनाये रखा तथा अनेक कार्यों में अपने आपको व्यस्त रखा जैसे त्रिकाल-सन्ध्या, विभिन्न प्रकार के खेल और क्रीड़ाएँ, गौहाटी के मन्दिरों में देवदर्शन, घर में विभिन्न धार्मिक उत्सवों में भाग लेना एवं आतिशबाज़ियों तथा मजलिसों का आनन्द उठाना। बर्मियों द्वारा असम प्रान्त को उजाड़ने की स्मृतियाँ अभी तक जनता के मन में ताज़ी थीं। छोटे-छोटे लड़के बर्मियों और अंग्रेज़ों की बीच कृत्रिम-लड़ाई का खेल खेलते थे। पर्वतीय गुसाईं कृष्णराम न्याय वागीश परिवार के कालिदास भट्टाचार्य से 1841 में औपचारिक रूप से धर्म में दीक्षित हुए। अहोम राजा रुद्रसिंह (1696-1714) इस पर्वतीय गुसाईं परिवार को असम लाये थे।

सिंगर, रोबिन्सन एवं अन्य अध्यापकों के शिक्षण में आनंदराम की बहुत अच्छी प्रगति देखकर जैनकिन और मैथी बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने आनंदराम को उच्च शिक्षा के लिए कलकत्ता जाने की सलाह दी। 1841 में एक सफ़ेद भैंस की कामाख्या देवी को बलि चढ़ाने की मनौती मनाते तथा अन्य देवी-देवताओं पर

चढ़ावा चढ़ाने के बाद, आनंदराम जी उस समय अपने स्कूल की अंतिम कक्षा में थे, यज्ञराम के पुत्र दुर्गाराम के साथ एक बंगाली मुख्तार, घरेलू नौकरों, रसोइये के साथ मैथी की छः सौ मन वाली नाव में बैठकर कलकत्ते के लिए रवाना हुए। दोनों साहबों ने कलकत्ते की बड़ी फ़र्मों के नाम इन दोनों विद्वानों को पैसा निकालने के अधिकार-पत्र दिये। इसके अतिरिक्त इन साहबों ने शहर के कुछ प्रतिष्ठित अंग्रेज़ सज्जनों, हिन्दू कालेज की प्रबन्ध समिति और राजकीय शिक्षा परिषद् के सदस्यों के नाम परिचय-पत्र भी दिये। कलकत्ते में इस दल ने कोलू टोला में एक मकान किराये पर लिया। दोनों युवा फूकनों को डेविड देयर के प्रबन्धाधीन कॉलिज के जूनियर विभाग में तीसरे वर्ष में प्रवेश मिला। वे वहाँ राजा द्वारकानाथ ठाकुर, राजा राधाकान्त देव, मोतीलाल सील जैसे विद्वानों से मिले जिन्होंने अत्यन्त स्नेहपूर्वक उनका स्वागत किया। मोतीलाल सील ने उनका विशेष ध्यान रखा। 1841 में दुर्गादास एक आकस्मिक बीमारी से दिवंगत हो गये। आनन्दराम अपने कालेज के पास पटलडांगा लेन में आ गये। दुर्गादास की मृत्यु से भयभीत, परिवार में जायदाद के झगड़ों से परेशान, उनकी माताजी ने मैथी साहब से आनंदराम को कलकत्ता से वापस बुलाने के लिए कहा। आनन्दराम, जिनकी प्रोन्नति अब कॉलेज के सीनियर विभाग के तृतीय वर्ष में हो गयी थी, अपने शिक्षकों (रामचन्द्र मित्र, ईश्वरचन्द्र साहा, गोपीकृष्ण मित्रा, जयगोपाल सेठ, जोन्स, कैप्टन रिचार्डसन आदि) और सहपाठियों में अपनी अध्ययनशील प्रकृति, सद्व्यवहार एवं बाङ्ला पर अपने अधिकार के कारण अत्यन्त लोकप्रिय हो गये थे। किताबों, अलमारियों, आधुनिक फ़र्नीचर, दरियों, पालकी और अन्य खरीदी हुई आधुनिक सामग्री के साथ छः सौ मन वाली भाड़े की नौका में बैठकर नवम्बर 1844 में वे घर लौट आये। यह बड़े खेद की ही बात है कि वे अपनी कॉलिज शिक्षा पूरी नहीं कर पाये यद्यपि उन्होंने गणित, यूनान, रोम, भारत और इंग्लैंड के इतिहास, अंग्रेज़ी कविता एवं ज्ञान की अन्य शाखाओं पर अच्छी तरह से अधिकार प्राप्त कर लिया था। अंग्रेज़ी भाषा और अंग्रेज़ी उच्चारण में उन्होंने विशेष योग्यता प्राप्त की थी।